शौरसेनी प्राकृत में भाषा–तत्त्व

रामधनी राम*
डॉ० दुधनाथ चौधरी*

जैन–परम्परा के प्राचीन ग्रन्थ प्राकृत–भाषा में निबद्ध है। श्रमण–परम्परा के पोषक वैदिक–युगीन 'व्रात्य' आदि प्राचीनजन प्राकृतभाषा का व्यवहार करते थे। उनकी प्राकृत भाषा वेदभाषा 'छान्दस्' से कुछ भिन्न थी। वह शूरसेन की भाषा शौरसेनी प्राकृत' की परम्परा में विकसित हुई थी। श्रमण–परम्परा के महापुरुष भगवान् महावीर ने भी अपने उपदेशों की भाषा जन–बोली प्राकृत को बनाया। महावीर के उपदेश दो रूपों में संरक्षित और संकलित हुए। गणधर और आचार्यों की परम्परा द्वारा अपनी स्मृति से महावीर के उपदेशों को द्वादशांग श्रुत के रूप में सुरक्षित रखा गया था, वह क्रमशः विलुप्त होता गया। अतः शेष श्रुतांश को दक्षिण भारत के दिगम्बर जैनाचार्यों ने स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना कर और उसे ईसा–पूर्व प्रथम शताब्दी में लिपिबद्ध कर सुरक्षित किया। दिगम्बर–परम्परा के अनुसार ई०पू० प्रथम शताब्दी में गुणधराचार्य ने 'कसायपाहुड' नामक ग्रन्थ की रचना 180 शौरसेनी प्राकृत गाथाओं में की। दिगम्बर–परम्परा में लिपिबद्ध श्रुत–ग्रन्थों की श्रेणी में गुणधराचार्य को 'प्रथम श्रुतकार' स्वीकार किया गया है।[1] इन्हीं के परवर्ती आचार्य धरसेन की प्रेरणा से आचार्य पुष्पदन्त एवं मुनिश्री भूतबलि (ईसा के 73 से 87 वर्ष के लगभग) ने 'छक्खंडागमसुत्त' (षट्खण्डामसूत्र) नामक ग्रन्थ की शौरसेनी प्राकृत में रचना की और ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी (श्रुतपंचमी) को उसकी लिखित ताड़पत्रीय प्रति की संघ ने पूजा की।[2] ग्रन्थ लेखन का यह क्रम निरन्तर चलता रहा। जैन आगमों की यह सुरक्षा तत्कालीन प्रमुख प्राचीन प्राकृत शौरसेनी में की गयी। यही शौरसेनी प्राकृत तक दक्षिण से उत्तर और पूर्व से पश्चिम तक सम्पर्क भाषा प्राकृत के रूप में प्रसिद्ध थी। अतः दिगम्बर–परम्परा के इन ग्रन्थों के कहीं इस प्राकृत के नामोल्लेख की आवश्यकता नहीं हुई और इस भाषा की परम्परा आगे 12–13वीं शताब्दी तक ग्रन्थलेखन में चलती रही।

महावीर के उपदेशों को सुरक्षित रखने का दूसरा प्रयत्न श्वेताम्बर आचार्यों की परम्परा में भी हुआ। ईसा की पांचवी शताब्दी के लगभग बलभीनगर में सम्पूर्ण आगम ग्रन्थों को प्रथम बार लिपिबद्ध भी कर लिया गया। ये आगम जिस प्राकृतभाषा में संकलित किये गये, उसे 'अर्द्धमागधी' की प्राकृत कहा गया है।

शौरसेनी और मागधी प्राकृत से निर्मित यह 'अर्धमागधी' प्राकृत साहित्य के लिए नयी भाषा होने के कारण इसके नाम का उल्लेख भी कुछ परवर्ती ग्रन्थों में किया गया। यह अर्धमागधी प्राकृत श्वेताम्बर–परम्परा के धार्मिक ग्रन्थों की भाषा बनी रही। इस 'अर्धमागधी प्राकृत' में फिर अन्य कोई लोक–साहित्य नहीं लिखा गया; क्योंकि यह प्राकृतभाषा जन–सामान्य में प्रचलित नहीं थी। इसलिए श्वेताम्बर–परम्परा के परवर्ती धार्मिक कथा–ग्रन्थों और व्याख्या–साहित्य के लिए 'महाराष्ट्री प्राकृत' का प्रयोग किया गया, जो 'शौरसेनी प्राकृत' का भी विकसित रूप है। दिगम्बर–परम्परा ने धार्मिक कथा और काव्य–ग्रन्थों के लिए शौरसेनी प्राकृत से विकसित अपभ्रंश भाषा का प्रयोग किया। इस प्रकार भगवान् महावीर के बाद लगभग दो हजार वर्षों तक जैन ग्रन्थों के साथ शौरसेनी, अर्धमागधी, महाराष्ट्री प्राकृतों एवं अपभ्रंश भाषा का सम्बन्ध बना रहा है। अतः प्राकृत जैन–परम्परा की मूलभाषा है। ध्यातव्य है कि जैनाचार्यो ने भारत की प्रायः सभी भाषाओं में अपना साहित्य लिखा है।

प्राकृत व्याकरण के प्राचीन सिद्धान्तों के उपलब्ध उल्लेखों एवं प्राकृत व्याकरण के प्रमुख ग्रन्थों के विवरण से स्पष्ट है कि सभी ने शौरसेनी प्राकृत को एक व्याकरण–सम्मत एवं साहित्य की समर्थ भाषा स्वीकार किया है। स्थानीय प्रभाव एवं प्रयोग की विशिष्टता के कारण सामान्य प्राकृत कतिपय विशिष्ट प्रयोगों के कारण भिन्न नामों से जानी जाती रही है; उनमें शौरसेनी, मागधी, महाराष्ट्री एवं पैशाची प्राकृतों के नाम प्रायः सभी ने गिनाये हैं। इनमें आधरभूत 'सामान्य प्राकृत' किसे स्वीकार किया जाये– इस विषय में प्राचीन एवं अर्वचीन विद्वान् प्रयत्न कर रहे हैं।

संस्कृत में प्राकृत का व्याकरण लिखने वाले वैयाकरणों का प्रमुख लक्ष्य काव्यभाषा प्राकृत के स्वरूप को प्रकट करना रहा है। काव्यों, नाटकों, कथाओं में प्रयुक्त प्राकृतों ने उन्हें सामान्य प्राकृत वही प्रतीत हुई; जिसके अपने कोई विशेष लक्षण नहीं थे। अतः अधिकांश वैयाकरणों ने 'महाराष्ट्री' को सामान्य प्राकृत के रूप में प्रस्तुत किया। किन्तु जो वैयाकरण यह जानते थे कि सामान्य प्राकृत के प्रायः सभी लक्षणों को समेटे हुए जो अन्य विशेषताओं से भी युक्त है, ऐसी शौरसेनी प्राकृत प्रमुख है; उन्होंने शौरसेनी प्राकृत को आधारभूत प्राकृत कहा।[3]

प्राकृत–वैयाकरणों ने दिगम्बर–परम्परा के सिद्धान्त–ग्रन्थों की भाषा 'शौरसेनी प्राकृत' के उदाहरण अपने ग्रन्थों में नहीं दिये और न ही श्वेताम्बर आगम–ग्रन्थों के सन्दर्भ देकर 'अर्धमागधी प्राकृत' के लक्षणों का विवेचन किया। इस साहित्य से वे परिचित न रहे हों, ऐसा हो नहीं सकता। इस स्थिति के पीछे

***शोध छात्र स्नातकोत्तर प्राकृत एवं जैनशास्त्र विभाग वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)**
***शोध निर्देशक एवं अध्यक्ष स्नातकोत्तर प्राकृत एवं जैनशास्त्र विभाग वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)**

यही कारण प्रतीत होता है कि वैयाकरण उनके लिए प्राकृत व्याकरण लिख रहे थे, जो संस्कृतज्ञ थे और जो संस्कृत के माध्यम प्राकृत ज्ञान प्राप्त कर काव्य, नाटक में प्रवृत्त हो सकें या उनका आनन्द ले सकें। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि वैयाकरण यह भी समझते थे कि जो शौरसेनी एवं महाराष्ट्री के नियम को पूर्णतया जानता है, वह काव्य, नाटक के साथ सिद्धान्त एवं आगम–ग्रन्थों की भाषा को भी समझ सकता है; क्योंकि शौरसेनी प्राकृत ही अन्य प्राकृत भाषाओं की मूलाधार है।[4]

'शौरसेनी' को 'मूल प्राकृत' मानने की परम्परा श्रमण–संस्कृति में विद्यमान है। शूरसेन प्रदेश और सूरसेनों की भाषा होने से यह शौरसेनी बाद में विकसित अन्य प्राकृतों से इतिहास की दृष्टि से प्राचीन है।

प्रो० पी०एल० वैद्य ने भी अपने एक लेख में यह स्पष्ट किया है कि ''संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त प्राकृत मुख्यरूप से शौरसेनी प्राकृत थी। शौरसेनी ही मागधी और अर्धमागधी का मूल आधार थी।'' प्रो० ए०एम० घाटगे ने नाटकों में प्रयुक्त शौरसेनी की प्रमुख विशेषताओं का विश्लेषण किया है और ''शौरसेनी को सामान्य प्राकृत के रूप में वहाँ स्वीकार किया गया है।'' इसी शौरसेनी का अध्ययन जर्मन विद्वान् आर० श्मिदित ने भी किया है,[5] जिसका अंग्रेजी अनुवाद प्रो० एस०आर० बनर्जी ने प्रकाशित किया है।

इस प्रकार साहित्य में शौरसेनी प्राकृत की प्रमुखता, वैदिक युग में प्राकृत के प्रमुख क्षेत्र मध्यदेश की प्राचीनता, शौरसेनी प्राकृत का देश के विभिन्न भागों में प्रयोग और विभिन्न प्राकृतों के प्रमुख लक्षणों की शौरसेनी में समावेश आदि प्रमुख कारण है; जो शौरसेनी प्राकृत को भारतवर्ष की मूल जनभाषा प्राकृत के पद पर प्रतिष्ठित करते हैं। दिगम्बर जैन–ग्रन्थों की भाषा शौरसेनी प्राकृत एवं नाटकों में प्रयुक्त नाटकीय शौरसेनी प्राकृत उसी मूल शौरसेनी प्राकृत के परवर्तीरूप है, जिनमें समानता अधिक भिन्नता कम है। प्राकृत वैयाकरणों ने अपने ग्रन्थों में शौरसेनी की जो प्रमुख विशेषताएं गिनायी हैं, वे उसकी विशेषता बताने के लिए है।

प्राचीन भारतीय भाषाओं में शौरसेनी प्राकृतभाषा का विशेष महत्त्व है; क्योंकि वह साहित्यिक भाषा की 'आधारभाषा' है। 'शौरसेनी प्राकृत' सिद्धान्त–दर्शन और काव्य दोनों की भाषा रही है। राजकीय आदेशों और जनपदों में भी वह प्रयोग की जाती रही है। उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक का भूभाग शौरसेनी का विकास–क्षेत्र रहा है। सूरसेन भूभाग के अस्तित्व के समय में 'लोकभाषा' के रूप में, नाटकों के निर्माण–काल के प्रारम्भ से 'काव्यभाषा' के रूप में और श्रमण–परम्परा के शुभारम्भ से 'सिद्धान्तभाषा' के रूप में 'शौरसेनी प्राकृत' की प्राचीनता का सम्बन्ध जुड़ता है। वैदिक भाषा में भी प्राकृत के तत्त्व उपलब्ध है। ऐशियाा के

विभिन्न भूभागों की साहसिक यात्रा करने वाले जाने–अनजाने व्यापारियों की भाषा के प्रयोग भी प्राकृत की प्राचीनता पर प्रकाश डालते हैं।

भरत मुनि ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में विभिन्न प्राकृतों के नाम के साथ शौरसेनी का उल्लेख कर 'प्राकृत' भाषा के कुछ नियम और उदाहरण भी दिये हैं। प्रारम्भ में 10 गाथाएँ प्राकृत में ही लिखी मिलती है। भरत के द्वारा उल्लिखित 'प्राकृत' भाषा का आशय शौरसेनी प्राकृत है, यह मत प्रो० मनमोहन घोष आदि विद्वान् सिद्ध कर चुके है। भरत के द्वारा उल्लिखित ये प्राकृत के नियम भी दिगम्बर जैन–परम्परा के सिद्धान्त–ग्रन्थों की भाषा में प्रायः उपलब्ध हैं।

भरत नाट्यशास्त्र दिगम्बर जैन सिद्धान्त–ग्रन्थ

1. ख, घ, थ, ध, और भ का 'ह' में परिवर्तन –
   मुख>मुह, मेघ>मेह, कथा>कहा, मुह (नियम० 8), मेह
   प्रभूतझपहूअ बंधकहा, पहुदि (निय० 14), पहु (पंचा० 27)
2. ट् का ड् –
   कुटी>कुडी, कटक>कडअ कोडी (षट० 1–5–18), कडअ (समय० 130)

वैयाकरण और शौरसेनी

प्रथम वैयाकरण चण्ड ने अपने लघुकाय 'प्राकृत–लक्षण' में शौरसेनी से सम्बन्धित एक ही सूत्र दिया है; परन्तु जो भी नियम निर्धारित किये है, ये सभी प्राकृत के सामान्य नियम होते हुए भी शौरसेनी प्राकृत नियमों के अधिक वैशिष्ट्य की जानकारी देते हैं। वररुचि ने अपने व्याकरण में प्रारम्भ में जो प्राकृत के नियम दिये हैं, उनमें से अधिकांश नियम शौरसेनी प्राकृत के है। उसके लिए 'सामान्य प्राकृत' का अर्थ 'शौरसेनी' रहा है। इसीलिए उसने, पैशाची और मागधी प्राकृत की प्रकृति भी शौरसेनी को माना है। यह बात उसने सामान्य प्राकृत के नौ अध्याय समाप्त करके 10वें एवं 11वें अध्याय में कही है। अतः डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ने यह मन्तव्य ठीक ही व्यक्त किया है कि ''प्राचीन समय में शौरसेनी इतनी ख्यात थी कि उसे 'सामान्य प्राकृत' समझा जाता था।''[6] उन्होंने सिद्धान्त ग्रन्थों की शौरसेनी प्राकृत के नियमों को सम्मिलित करते हुए कुछ विस्तार से शौरसेनी के नियम दिये हैं।[7] डॉ० ए०एम० घाटके ने अपने एक निबन्ध में नाटकों में प्रयुक्त शौरसेनी नियमों की चर्चा की है। 'छक्खंडागमसुत्त' एवं 'कसायपाहुडसुत्त' आदि ग्रन्थों के सम्पादकों ने भी परम्परागत रूप से ही शौरसेनी के परिशिष्ट में शौरसेनी को स्पष्ट करने का अच्छा प्रयत्न किया है। पं० बालचन्द्र शास्त्री ने 'षट्खण्डागमः एक परिशीलन' में ग्रन्थ की भाषात्मक सामग्री प्रस्तुत की है, जो उपयोगी है।

शौरसेनी प्राकृत के विशिष्ट प्रयोग :–शौरसेनी प्राकृत का ज्ञान विभिन्न प्राकृतों के अभ्यास के बिना अधूरा है। शौरसेनी भाषा की पृष्ठभूमि में 'पवणसार' ग्रन्थ की

भाषा विकसित हुई है तथा उस पर संस्कृत का भी पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगत होता है। जब एक ग्रन्थ की भाषा का यह रूप है, तो समस्त दिगम्बर जैन–परम्परा के प्राचीन सिद्धान्त–ग्रन्थों की भाषा में तो निश्चित ही संस्कृत एवं नटकीय शौरेसनी के रूप सम्मिलित मिलेगें ही; क्योंकि इन सब की आधारभूत भाषा शौरसेनी प्राकृत रही है। वही से अनेक सामान्य प्रयोग परवर्ती भाषाओं में भी व्याप्त हुए हैं। सिद्धान्त–ग्रन्थों की शौरसेनी प्राकृत की सामान्य विशेषताएं एवं नियम विद्वानों ने स्पष्ट किये है। कतिपय विशिष्ट शौरसेनी प्रयोग यहाँ द्रष्टव्य है। यथा–

1. दीर्घ एवं ह्रस्व–विधान के विकल्प –
   केवलिगुणा केवलीणाणं (पंचा–30)
2. संधि–रूपों में विकल्प –
   कोधादीया (सम०–87) धम्म आदि (सम०– 36)
3. ऋकार का विभिन्न रूपों में परिवर्तन –

अ =	अगहिद	(षट्० 1 पृ. 106)	>अगृहीत
इ =	इड्ढि	(षट्० 1–1–56)	>ऋद्धि
उ =	पहुडि	(षट्० 1–1–61)	>प्रभृति
ओ =	मोस	(षट्० 1–149)	>मृषा

4. सरल व्यंजन परिवर्तन –
   'क' के स्थान पर वैकल्पिक प्रयोग –

ग =	वेदग	(षट्० प्र०ख०)	>वेदक
	एगतिण	(प्र०सा० 66)	>एकान्तेन
क =	अणुकूलं	(का० 456)	>अनुकूलं
य =	णिरयगदी	(षट्० 1–1–24)	>नरकगति
अ =	अलिअं	(का० 406)	>अलीकम्

'षड्खण्डागमसूत्र' में प्राप्त पागार, सगड, केटय, मसय आदि शब्द इसी प्रकार के हैं। इस प्रकार शौरसेनी प्राकृत के तात्त्विक विवेचन में भाषा की भी प्रमुखता है।

संदर्भ सूची :–

1. जैनागम ग्रन्थों का लिपिकरण – डॉ० सुदर्शन लाल जैन, शोधार्थ– 26, पृ. 163
2. षट्खण्डागम लेखन कथा – डॉ० राजाराम जैन, आरा, पृ.7
3. 'प्रकृति : शौरसेनी' – वररुचि प्राकृत प्रकाशन, 9–5

4. 'अस्य पैशाच्या : प्रकृतिः शौरसेनी' – वररुचि प्राकृत प्रकाशन, 10–2
5. प्रवचनसार – अंग्रेजी भूमिका, पृ. 116
7. अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृ. 383–394
8. शौरसेनी प्राकृत व्याकरण – जर्नल ऑफ द यूनिवर्सिटी ऑफ बम्बई, भाग– 6, 1935

****